लक्ष्मीरतन कॉटन मिल्स कंपनी लिमिटेड

बनाम

एल्युमीनियम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड

16 अक्टूबर, 1970

[जे. एम. शेलाट और सी. ए. वैदयलिंगम, जे.जे.]

परिसीमा अधिनियम, 1908, धारा 19(1)- दायित्व की अभिस्वीकृति- क्या होती है- निगम की ओर से अभिस्वीकृति देने का प्राधिकार कब निहित किया जा सकता है।

18 जनवरी, 1944 से पहले मैसर्स लक्ष्मीरतन कॉटन मिल्स कंपनी लिमिटेड (अपीलकर्ता-कम्पनी) सहित छह कम्पनियों और एल्युमीनियम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (प्रतिवादी निगम) का प्रबंधन संयुक्त रूप से दो समूहों द्वारा किया जाता था, जिन्हें सिंघानिया और गुप्ता समूह के नाम से जाना जाता है। दोनो समूहों के बीच विवादों के परिणामस्वरूप मध्यस्थता के लिए निर्देश था। 18 जनवरी, 1944 पंचाट की तिथि के पश्चात, उपरोक्त छह कम्पनियाेंं का प्रबंधन और नियंत्रण दोनों समूहों में से किसी एक के पास आया। निगम का नियंत्रण और प्रबंधन सिंघानिया समूह के पास रहा। पंचाट के पैरा न. 9 में यह कहा गया है कि पंचाट उस अग्रिम राशी के सम्बंध में नही है जो किसी भी पक्ष ने या उनकी अलग-अलग कम्पनियों ने उन सभी को या उनमें से किसी एक को दी है या जो

राशी उनके पास जमा है और जो सामान्य अनुक्रम में देय है और भुगतान की गई है। पंचाट के बाद अपीलकर्ता-कम्पनी ने प्रतिवादी निगम को अदा की गई अग्रिम राशी व उनकी और से किए गए व्यय के सम्बंध में खाते का लेखा-विवरण भेजा। इस लेखा-विवरण पर इस आधार पर आपत्ति जताई गई कि अपीलकर्ता-कम्पनी ने संयुक्त प्रबंधन की अवधि के दौरान इसका रखरखाव ठीक से नहीं किया था। खातों के सम्बंध में सुलह के प्रयास विफल होने के बाद अपीलकर्ताओं ने निगम से रुपये 3,56,207.9.6 और रुपये 72,595.4.6 का दावा करते हुए दो वाद, संख्या 63/1949 और 65/1949 दायर किए। वाद संख्या 63/1949 में यह दावा किया गया कि वाद समयावधि अन्दर था क्योंकि वर्ष 1946 व 1947 में कई मदों के समायोजन के बाद रूपये 2,96,110.11.6 की राशि अपीलार्थी-कंपनी पर देय पाई गई और किसी भी मामले में वाद परिसीमा बाधित होने से एक पत्र (प्रदर्श 1) दिनांकित 16 अप्रैल, 1946 द्वारा सुरक्षित था जिसमें निगम के सचिव व मुख्य लेखाकार एस द्वारा उक्त खातों के तहत देय और देय राशि का भुगतान करने के लिए निगम के दायित्व को स्वीकार करते हुए संबोधित किया गया। इसी तरह के दावे वाद संख्या 65/1949 में किए गए थे। निगम की ओर से दायर किए गए लिखित कथन में अन्य बातों के साथ-साथ यह अनुरोध किया कि उक्त पत्र परिसीमा अधिनियम, 1908 की धारा 19, जो उस समय वादो पर लागू था, के प्रावधान अनुसार अभिस्वीकृति के बराबर नही था और अंत में, अगर उक्त पत्र एक

अभिस्वीकृति के बराबर था भी तो यह निगम पर बाध्यकारी नहीं था। विचारण न्यायालय ने वादों को डिक्री किया लेकिन उच्च न्यायालय ने उन्हें परिसीमा-बाधित बताते हुए खारिज कर दिया। इस न्यायालय में की गई अपीलों में जिन प्रश्नों पर विचार किया जाना था वे थेः (i) क्या विचाराधीन पत्र एक अभिस्वीकृति के बराबर है; (ii) क्या यह निगम द्वारा एक अभिस्वीकृति थी, और यदि नहीं (iii) क्या सचिव-व-मुख्य लेखाकार को निगम की ओर से दायित्व को स्वीकार करने का एेसा अभिव्यक्त या निहित अधिकार था जो निगम को आबद्ध करे। अपीलों को स्वीकर किया,

अभिनिर्धारित - (1) (क) धारा 19(1) परिसीमा अधिनियम, 1908 के प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि जिस कथन पर अभिस्वीकृति का निवेदन किया गया है, वह धारा की आवश्यकता के अनुसार एक विद्यमान दायित्व से सम्बंधित और अधिनियम द्वारा विहित परिसीमा अवधि के अवसान से पूर्व होनी चाहिए। हालांकि, यह भुगतान करने के वचन के समान नहीं है क्योंकि अभिस्वीकृति कार्यवाही करने के नए अधिकार का सृजन नहीं करती है बल्कि मात्र परिसीमा अवधि को बढ़ाती है। कथन में दायित्व की सटीक प्रकृति या विशिष्ट चरित्र को इंगित करने की आवश्यकता नहीं है। प्रश्नगत कथन में उपयोग किए गए शब्द, कैसे भी, वर्तमान विद्यमान दायित्व से सम्बंधित होने चाहिए और पक्षकारों के मध्य विधिक सम्बंध, जैसे कि ऋणी व देनदार का सम्बन्ध, को इंगित करते हुए उनमें विधिक सम्बंधों को स्वीकार करने का इरादा होना चाहिए। इस प्रकार का इरादा स्पष्ट रूप

से होने की आवश्यकता नहीं है और इसका अनुमान अभिस्वीकृति के क्रियान्वयन या उसकी प्रकृति से और आसपास की परिस्थितियों द्वारा लगाया जा सकता है। आमतौर पर, विचाराधीन कथन को एक उदार दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। इसका मतलब निश्चित रूप से यह नहीं है कि जहां एक कथन एक विशेष विधिक सम्बंध के अस्तित्व को स्वीकार करने के इरादे के बिना किया जाता है तो वहां इस तरह का इरादा किसी अंर्तग्रस्त या दूरगामी तर्क द्वारा कथन करने वाले व्यक्ति से जोड़ा जाना चाहिए।[629 सी-ई]

सन्दर्भ - *खान बहादुर शापूर फ्रीडूम माजदा बनाम दुर्गा प्रसाद चमारिया, [1962] 1 एस.सी.आर. 140, तिलक राम बनाम नाथू, ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 935, 938, 939, ग्रीन बनाम हम्फ्रेवा, [1884] 26 Ch. D. 474, 481, ताजपाल सरावगी बनाम लल्लनजी जैन, सी.ए. नं. 766/62 दिनांक 08-02-1965 और अब्दुल रहीम उस्मान एंड कम्पनी बनाम ओजामशी पुरुषोत्तमदास एंड कम्पनी, [1928] आई.एल.आर. 56 कलकत्ता, 639*

(ख) पक्षकारों के मध्य पत्राचार से व आसपास की परिस्थितियों से यह दर्शित होना चाहिए कि निगम की लेखा पुस्तकों में अपीलार्थी-कम्पनी के नाम से विद्यमान खाता है, जिसमें शेष राशि पर समय-समय पर ब्याज

जमा किया गया हो और सुलह की अवधि के दौरान पारित वस्तुओं के सम्बंध में राशि को भी उसमें जमा किया गया हो। पत्र प्रदर्श 1 में कथन कि "उपरोक्त सभी समायोजन के बाद स्थिति संलग्न लेखा विवरण के अनुसार होगी" अर्थात रुपए 107447/13/11 की राशि शेष व अपीलार्थी-कम्पनी द्वारा देय है, धारा 19(1) के अर्थ के अधीन अभिस्वीकृति के समान होनी चाहिए। अगर पत्र को पक्षकारों के मध्य विचाराधीन विवाद, जो की अपीलार्थी-कंपनी द्वारा दावा की गई राशि के सही होने के साथ-साथ इस सम्बंध में हुए पत्राचार के सम्बंध में था, की पृष्ठभूमि में देखा जाए तो यह कहना असंभव होगा कि पत्र और उसके साथ संलग्न लेखा विवरण केवल व्याख्यात्मक थे और लेनदार-देनदार के विधिक संबंध को स्वीकार करने वाले और लेखा विवरण के अंत में शेष राशि का भुगतान करने के दायित्व को स्वीकार करने के समान नहीं थे।[635 डी-एफ]

केवल इस तथ्य से कि पत्र में शेष राशि की पुष्टि के लिए कहा गया था और यह तथ्य कि अपीलार्थी-कंपनी इसकी पुष्टि करने में असफल रही, इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते कि दायित्व की स्वीकृति सशर्त थी और इसलिए वह अभिस्वीकृति के रूप में काम नहीं कर सकती। पत्र में मांगी गई स्वीकृति विद्यमान लेखा के अस्तित्व को और लेखा की अंतिम गणना के पश्चात निगम के अनुसार देय राशि की देयता को स्वीकार करने की शर्त नहीं थी। स्वीकृति के लिए ऐसी कोई शर्त नहीं थी जो पूरी न की गई हो। [635 जी; 636 एफ-जी; 637 बी]

विशेष - *मणिराम बनाम रूपचंद, एल.आर. 33 आई.ए. 165, राजा कायली अरुणाचेल राव बहादुर बनाम श्री राजा रंगिया अप्पा राव बहादुर, [1906] आई.एल.आर. 29 मद्रास 519 और बल्लप्रगड राममूर्ति बनाम तम्मना गोपुया, [1917] आई.एल.आर. 40 मद्रास 701*

सन्दर्भ – *इन री रिवर स्टीमर कम्पनी बनाम मिशेल, एल.आर. 6 सी.एच. ऐप. 822, 828*

(2) यह तर्क की पत्र प्रदर्श 1 निगम की ओर से अभिस्वीकृति के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष विरचित विवाधक में शामिल नहीं किया गया था। इस न्यायालय में इसे प्रथम बार उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी। [628 बी]

(3) यदि दोनों पक्षों के बीच पत्राचार एवं इसके साथ संलग्न खातों के विवरण की बारीकी से जांच की जाए तो यह स्पष्ट होता है कि एस अपीलकर्ता कंपनी द्वारा किए गए दावे की जांच करने के लिए, जिन विभिन्न वस्तुओं के लिए अपीलकर्ता कंपनी ने उधार का दावा किया था उनकाे स्वीकार करने या अस्वीकार करना और, जो महत्वपूर्ण है, दूसरों को अनुमति देने के लिए अधिकृत था। यह कि उसके पास ऐसा अधिकार था, इस तथ्य से स्पष्ट था कि जिन वस्तुओं की उसने अनुमति दी थी, उनका क्रेडिट अपीलार्थी को दिया गया था और अपीलार्थी कंपनी के क्रेडिट के सम्बन्ध में निगम द्वारा अपनी लेखा बहियों में रखे गए खाते में

आवश्यक प्रविष्टियाँ की गईं। यह कहना असंभव था कि खातों को अंतिम रूप देने के दौरान, एस ने, ऐसा करने के लिए अधिकृत हुए बिना, अपीलार्थी कंपनी द्वारा दावा की गई विभिन्न वस्तुओं को अपनी सहमति प्रदान की। ना ही यह कहा जा सकता था कि उसे बिना अधिकार प्राप्त हुए, उसके द्वारा उन वस्तुओं को पास करने पर निगम के खाता पुस्तकों में आवश्यक प्रविष्टियाँ की गई थीं। इसके अलावा, वह खातों को अंतिम रूप देने व शेष राशी और कम्पनी को देय राशि निकालने के लिए अधिकृत हुए बिना अपीलार्थी कंपनी को खाते के विवरण "खाते के अनुसार" देय शेष राशि दिखाते हुए नहीं भेज सकता था। [637 ई-एफ; 638 बी-सी]

सन्दर्भ - *उमा शंकर बनाम गोविंद नारायण, आई.एल.आर. 46 इलाहाबाद 982*

सिविल अपील निर्णयः सिविल अपील संख्या - 116, 117 और 119 आॅफ 1967

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के प्रथम सिविल अपील संख्या 441/1950 व 442/1950 में पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 19.05.1966 के विरूद्ध अपीलें

अपीलार्थीगण की और से *(सभी अपीलों में) - एस.वी. गुप्ते, एस.टी. देसाई, जे.पी. गोयल और जी.एन. वानटू*

प्रत्यर्थी की और से *(सभी अपीलों में) - सिद्धार्थ राय, ए.के. सेन, रामेश्वर*

नाथ, कृष्ण सेन और स्वर्णजीत सोधी

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

शेलट, जे. - 18 जनवरी, 1944 से पहले मैर्सस लक्ष्मीरतन कॉटन मिल्स कंम्पनी लिमिटेड (इसके बाद अपीलार्थी-कम्पनी के रूप में संदर्भित), एल्यूमीनियम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (इसके बाद निगम के रूप में संदर्भित), जे.के. लिमिटेड, बहरीलाल कैलाशपत इंडिया सप्लाईज़, नॉर्दर्न इंडिया ट्रेडिंग कंपनी और नॉर्दर्न इंडिया ब्रश मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड का प्रबंधन संयुक्त रूप से दो समूह द्वारा किया जाता था, जिन्हें आसानी के लिए सिंघानिया व गुप्ता समूह कहा जा सकता है। उनके मध्य विवाद होने पर दिनांक 9 दिसंबर 1943 के एक संदर्भित विलेख द्वारा उन्हे मध्यस्थता के लिए भेजा गया। पंचाट दिनांक 18 जनवरी, 1944, के विस्तार में जाना आवश्यक नहीं है, जिसके द्वारा ये विवाद निर्णीत किया गया सिवाय इसके कि पंचाट की तारीख से और उसके बाद उपरोक्त कम्पनियाेंं को उक्त दो समूहों में से किसी एक या दूसरे के प्रबंधन और नियंत्रण में लाया गया था। निगम सिंहानिया समूह के नियंत्रण और प्रबंधन के अधीन आ गया।

पैरा 9 पंचाट में निम्नलिखित कथन किया गयाः

‘‘लक्ष्मीरतन कॉटन मिल्स कंम्पनी लिमिटेड, एल्यूमीनियम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड, जे.के. लिमिटेड, बहरीलाल कैलाशपत इंडिया सप्लाईज़, नॉर्दर्न इंडिया ट्रेडिंग कंपनी और नॉर्दर्न इंडिया

ब्रश मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड के संबंध में उपरोक्त पंचाट या निर्देश उन अग्रिमों पर लागु नही होते हैं जो किसी भी पक्ष या उनकी अलग-अलग फर्मों के द्वारा उन सभी को या उनमें से किसी एक को दिए हों या उनका धन जो उनके पास जमा हो और वह देय होगा और उसका सामान्य अनुक्रम में भुगतान किया जाएगा।''

अपीलकर्ताओं के अनुसार, उनकी व्यापारिक पुस्तकों में उनके द्वारा निगम को दी गई अग्रिम राशी या खर्च की गई रकम के संबंध में अंकन था, जिसके सम्बंध में और उस पर देय ब्याज के लिए पंचाट के पैरा (9) में विशेष रूप से प्रावधान किया गया है। पंचाट के बाद अपीलकर्ता-कंपनी ने निगम को खाते का एक विवरण भेजा, लेकिन उस पर इस आधार पर आपत्ति जताई गई कि अपीलकर्ता-कंपनी ने निगम के पिछले संयुक्त प्रबंधन के दौरान, खाते का उचित तरीके से रखरखाव नहीं किया था और यह कि कई मदों का या तो ठीक से हिसाब नहीं दिया गया था या दर्ज नहीं किया गया था। इसके बाद दोनों पक्षों के बीच पत्राचार शुरू हुआ। पक्षकारों ने अपने संबंधित अधिकारियों को भी नियुक्त किया है ताकि वे अपने संबंधित खातों के सम्बन्ध में विवाद सुलझा सकें, निगम का प्रतिनिधित्व उसके सचिव व मुख्य लेखाकार, एक सुब्रमण्यम द्वारा किया गया और अपीलकर्ता-कंपनी का प्रतिनिधित्व कभी-कभी एक अरोड़ा द्वारा और अन्य समय पर एक नेवतिया द्वारा किया जाता है। चूँकि कोई समझौता नहीं हो सका, अपीलकर्ताओं ने निगम से रुपये 3,56,207-9-6 और रुपये 72,595-4-6

का दावा करते हुए दो मुकदमें वाद संख्या 63/1949 और 65/1949 दायर किए।

वाद संख्या 63/1949 के पैरा 14 में, यह दावा किया गया था कि वाद परिसीमा अवधि के अन्दर था क्योंकि 1946 और 1947 में कई मदों के समायोजन के बाद रुपये 2,96,110-11-6 अपीलार्थी-कंपनी का देय पाया गया था और यह कि किसी भी अन्य स्थिति में मुकदमा उक्त सुब्रमण्यम द्वारा संबोधित एक पत्र दिनांक 16 अप्रैल, 1946 द्वारा भी परिसीमा द्वारा बाधित होने से सुरक्षित है जिसमे उसके द्वारा निगम की और से उक्त खातों के तहत शेष और देय पाई राशी के दायित्व को स्वीकार किया गया है। वाद संख्या 65/1949 में भी इसी तरह के कथन किए गए। निगम द्वारा दायर लिखित कथनों में अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा गया है कि उक्त दावे परिसीमा द्वारा बाधित थे, उक्त पत्र परिसीमा अधिनियम, 1908 की धारा 19, जो तब वादों पर लागू था, के अर्थ में एक अभिस्वीकृति के बराबर नहीं था और अंत में, कि भले ही उक्त पत्र एक अभिस्वीकृति के बराबर था, यह निगम के लिए बाध्यकारी नहीं था क्योंकि उक्त सुब्रमण्यम को निगम के लिए और उसकी ओर से और बाध्यकारी ऐसी कोई स्वीकृति देने का कोई अधिकार नहीं था। परिसीमा के प्रश्न पर, विचारण न्यायालय ने निर्धारण के लिए तीन प्रश्न उठाए; (1) क्या पत्र (प्रदर्श 1) निगम पर बाध्यकारी था, (2) क्या यह एक अभिस्वीकृति के बराबर है, और (3) यदि ऐसा है, तो क्या यह परिसीमा की अवधि का विस्तार करेगा ताकि

अपीलार्थियों द्वारा किए गए दावों को बाधित होने से बचाया जा सके। मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्यों पर विचार करने पर, अधिनस्थ न्यायालय ने तीनों प्रश्नों पर अपीलार्थियों के पक्ष में फैसला सुनाया और दोनों मुकदमों में डिक्री पारित की।

उक्त डिक्री के खिलाफ उच्च न्यायालय में तीन अपील दायर की गई थीं जिनमें दो निगम द्वारा और तीसरी अपीलार्थी-कंपनी द्वारा इस आधार पर कि उसके पक्ष में दावा कम राशि के लिए स्वीकार किया गया। तीनों अपील में उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सामान्य प्रश्न यह था कि क्या उक्त पत्र (प्रदर्श 1) परिसीमा की अवधि बढ़ाने की अभिस्वीकृति के बराबर है। उच्च न्यायालय, पक्षकारों के मध्य हुए पत्राचार और अन्य साक्ष्य पर विचार करने के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि पत्र (प्रदर्श 1) "केवल व्याख्यात्मक" था और इसका उद्देश्य निगम को आबद्ध करना नहीं था, भले ही यह "किसी प्रकार की अभिस्वीकृति" के समान था, लेकिन इसके लेखक, उक्त सुब्रमण्यम को निगम की ओर से किसी भी ऋण या दायित्व को स्वीकार करने का कोई अधिकार नहीं था। इस दृष्टि से उच्च न्यायालय ने दो वादों को परिसीमा से बाधित माना और निगम की अपीलें स्वीकार की। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता-कंपनी की अपील को अस्वीकार कर दिया और दोनों मुकदमों को खारिज कर दिया। इसलिए ये तीन अपीलें उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए प्रमाणपत्रों के अधीन हैं।

इस बात पर कभी विवाद नहीं हुआ कि, अपीलकर्ता-कंपनी द्वारा भरोसा किए गए पत्र (प्रदर्श 1) को छोड़कर, बशर्ते कि यह निगम पर बाध्यकारी अभिस्वीकृति के समान हो, अपीलकर्ताओं का दावा परिसीमा से बाधित है। नतीजतन, इन अपीलों में निर्धारण के प्रश्न वही हैं जो उच्च न्यायालय के समक्ष हैं। ये प्रश्न हमारे सामने तीन पहलुओं में रखे गए थे; सबसे पहले, क्या पत्र (प्रदर्श 1) एक अभिस्वीकृति के समान था, दूसरे, यदि ऐसा था, तो क्या यह निगम द्वारा एक अभिस्वीकृति थी, और तीसरा, यदि नहीं, तो क्या उक्त सुब्रमण्यम, जिसने इसे संबोधित किया था, के पास निगम की ओर से दायित्व स्वीकार करने का अभिव्यक्त या निहित एेसा प्राधिकार था, जो निगम को आबद्ध कर सके।

अपीलकर्ता-कंपनी के वकील ने यह तर्क देने की कोशिश की कि यद्यपि पत्र, (प्रदर्श 1) निगम के सचिव द्वारा लिखा गया था, जो मुख्य लेखाकार के पद पर भी आसीन था, और इसके अलावा, उस पत्र को निगम के लिए और उसकी ओर से संबोधित किया, वह पत्र निगम का और उसके द्वारा था। इसलिए, यदि पत्र एक अभिस्वीकृति के बराबर है, तो ऐसी अभिस्वीकृति निगम द्वारा ही होगी और यह सुनिश्चित करने के लिए कोई जांच आवश्यक नहीं होगी कि क्या उक्त सुब्रमण्यम के पास निगम को आबद्ध करने के लिए दायित्व स्वीकार करने का अधिकार था। हालाँकि, वादपत्र में ऐसा कोई कथन नहीं पाया गया है, उसमें केवल यह कहा गया कि "विवादित खाते की अभिस्वीकृति देने वाले कई पत्र हैं। वादी ने ऐसे

पत्रों में से 16 अप्रैल, 1946 का एक पत्र पेश किया है।'' लिखित कथन में इस बात से इन्कार किया गया कि निगम ने कभी भी कोई अभिस्वीकृति दी है या 16 अप्रैल, 1946 का पत्र ऐसी कोई अभिस्वीकृति थी। इस बात से भी इन्कार किया कि इसे लिखने वाले सुब्रमण्यम के पास किसी भी ऋण को स्वीकार करने का कोई अधिकार था। इस तरह के व्यापक इन्कार के बावजूद, उस तर्क को आच्छादित करने वाला कोई मुद्दा नहीं उठाया गया था जिसमें आग्रह किया गया हो कि उक्त पत्र को निगम का या निगम की और से माना जाना चाहिए, और इसलिए, सुब्रमण्यम के पास निगम की और से एसी अभिस्वीकृति करने का अधिकार होने या न होने का कोई प्रश्न ही नहीं था। ऐसा कोई तर्क विचारण न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष् दिया जाना भी दर्शित नही होता है, जहां विवाद इस प्रश्न के आसपास केंद्रित था कि क्या उक्त पत्र में एक अभिस्वीकृति थी और क्या उसके लेखक, जो निगम की ओर से इसे संबोधित कर रहे थे, के पास ऐसी अभिस्वीकृति करने का अधिकार था जो निगम पर आबद्धकारी हो। हमारे विचार में, श्री गुप्ते, इतनी देर से, पहली बार यह दलील नहीं दे सकते थे कि यह निगम ही था जिसने उक्त पत्र के माध्यम से अभिस्वीकृति दी थी और हमें उस पत्र का अर्थ स्वयं निगम द्वारा ऐसी अभिस्वीकृति के रूप में समझना चाहिए।

इसलिए, हमारे निर्धारण के लिए वास्तव में यह प्रश्न उठता है कि क्या उक्त पत्र में एक अभिस्वीकृति शामिल है, जिसे इसके लेखक

सुब्रमण्यम के पास अभिव्यक्त या निहित रूप से देने का अधिकार था। यहां तक कि इस प्रश्न का विस्तार और दायरा कम हो जाता है क्योंकि अपीलकर्ता-कंपनी के मामले में किसी भी प्रक्रम पर ऐसा दर्शित नहीं था कि निगम ने अपने सचिव को स्पष्ट रूप से इस तरह का अधिकार दिया हो। ऐसा कोई मामला श्री गुप्ते ने हमारे सामने भी नहीं उठाया और वास्तव में यह तर्क देने के लिए आगे बढ़े कि अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों से पता चलता है कि उन्हें ऐसा अधिकार अप्रत्यक्ष रूप से दिया गया था।

परिसीमा अधिनियम, 1908 की धारा 19(1) यह प्रावधान करती है कि जहां किसी संपत्ति या अधिकार के संबंध में वाद के लिए निर्धारित अवधि की समाप्ति से पहले, ऐसी संपत्ति या अधिकार के संबंध में दायित्व की अभिस्वीकृति उस पक्ष द्वारा हस्ताक्षरित लिखित रूप में की गई है जिसके खिलाफ ऐसी संपत्ति या अधिकार का दावा किया गया है, तो नवीन परिसीमा की अवधि की उस समय से प्रारम्भ हो जाती है जब अभिस्वीकृति पर इस प्रकार हस्ताक्षर किये गये थे। यहां 'हस्ताक्षरित' शब्द का अर्थ न केवल ऐसी पक्षकार द्वारा व्यक्तिगत रूप से हस्ताक्षरित है, बल्कि उस संबंध में विधिवत अधिकृत अभिकर्ता द्वारा भी हस्ताक्षरित है। धारा के स्पष्टीकरण 1 में यह प्रावधान है कि एक अभिस्वीकृति पर्याप्त होगी, हालांकि यह संपत्ति या अधिकार की सटीक प्रकृति को निर्दिष्ट करने से चूक जाती है, या यह कहती है कि भुगतान का समय अभी तक नहीं आया है, या भुगतान करने से इन्कार के साथ है या है मुजरा करने के दावे के साथ

जुड़ा हुआ है, या संपत्ति या अधिकार के हकदार व्यक्ति के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को संबोधित किया गया है। 1963 के नए अधिनियम की धारा 18 में काफी हद तक समान प्रावधान शामिल हैं।

यह स्पष्ट है कि जिस कथन पर अभिस्वीकृति का तर्क आधारित है, उसे विद्यमान दायित्व से संबंधित होना चाहिए क्योंकि धारा के लिए आवश्यक है कि इसे अधिनियम के तहत निर्धारित अवधि की समाप्ति से पहले किया जाना चाहिए। हालाँकि, इसे भुगतान करने के वादे के बराबर होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि एक अभिस्वीकृति कार्यवाही का नया अधिकार नहीं बनाती है बल्कि केवल परिसीमा की अवधि को बढ़ाती है। कथन में दायित्व की सटीक प्रकृति या विशिष्ट गुण को इंगित करने की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, विचाराधीन कथन में प्रयोग किए गए शब्द वर्तमान विद्यमान दायित्व से संबंधित होने चाहिए और पक्षकारों के बीच विधिक संबंध, जैसे कि, उदाहरण के लिए, एक देनदार और एक लेनदार का सम्बन्ध, के अस्तित्व को इंगित करते हुए और उनमें इन्हे स्वीकार करने का इरादा होना चाहिए। इस तरह के इरादे को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है और स्वीकृति की प्रकृति और आसपास की परिस्थितियों में निहितार्थ से इसका अनुमान लगाया जा सकता है। सामान्यतया, विचाराधीन कथन काे एक उदार दृश्टिकोण से देखना चाहिए। बेशक, इसका मतलब यह नहीं है कि जहां कोई बयान विधिक संबंध के अस्तित्व को स्वीकार करने के इरादे के बिना दिया जाता है, तो

ऐसे इरादे को बयान देने वाले व्यक्ति पर एक अन्तर्ग्रस्त और दूरगामी तर्क द्वारा तय किया जाना चाहिए। *(देखें खान बहादुर शापूर फ्रीडम माजदा बनाम दुर्गा प्रोसाद चमारिया, (1962) 1 S.C.R. 140 और तिलक राम बनाम नाथू, A.I.R. 1967 S.C. 935 at 938, 939*)। जैसा कि *ग्रीन बनाम हम्फ्रीज़, (1884) 26 Ch. D. 474 at 481* में फ्राई, एल.जे. ने कहा था, "एक अभिस्वीकृति लेखक द्वारा स्वीकारोक्ति है कि उस पर या तो पत्र प्राप्त करने वाले का या किसी अन्य व्यक्ति का, जिसकी ओर से पत्र प्राप्त किया गया है, का ऋण है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है कि वह ऋण को किसी को देय के रूप में संदर्भित करता है। मामले को खत्म करने के लिए आसपास की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पत्र के निष्पक्ष शब्दार्थ पर क़ानून को यह स्वीकारोक्ति करनी चाहिए कि लेखक पर ऋण बकाया है।" जैसा कि पहले ही कहा गया है, अभिस्वीकृति देने वाला व्यक्ति स्वयं ऋणी भी हो सकता है और स्वीकृति के लिए उसके द्वारा विधिवत अधिकृत व्यक्ति भी हो सकता है। *खान बहादुर शापूर फ्रेडूम माजदा* के मामला में न्यायालय ने गिरवी रखी गई संपत्ति को पूर्व बंधकदार के कहने पर सस्ती कीमत पर बेचे जाने से बचाने के लिए इसे स्वयं खरीद कर एक बंधककर्ता द्वारा दूसरे बंधकदार को लिखे गए एक बयान को स्वीकार कर लिया कि इससे बंधककर्ता और बंधकदार के विधिक संबंध की स्वीकृति होती है, और इसलिए, यह धारा 19 के अधीन एक अभिस्वीकृति होती है। साथ ही, मध्यस्थता के संदर्भ में एक समझौता, जिसमें यह बिना शर्त स्वीकारोक्ति

शामिल है कि जो भी खाते में ऋणी साबित होगा वह दूसरे को भुगतान करेगा, इसे एक अभिस्वीकृति के बराबर माना गया है। इस तरह की स्वीकृति इस शर्त के अधीन नहीं है कि समझौते को अभिस्वीकृति के रूप में स्वीकार करने से पहले, मध्यस्थ द्वारा दायित्व सुनिश्चित किया जाना चाहिए। अभिस्वीकृति कार्य करती है चाहे मध्यस्थ कार्य करे या नहीं। (देखें *तेजपाल सरावगी बनाम लल्लनजी जैन, C.A. No. 766 of 1962, decided on feb. 8, 1965, जिसमें अब्दुल रहीम उस्मान एंड कंपनी बनाम ओजमशी पुरूषोत्तमदास एंड कंपनी, (1928) I.L.R. 56 Cal. 639,* को मंजूरी दी गई।)

जिस पत्र (प्रदर्श 1) पर अभिस्वीकृति के रूप में भरोसा किया गया है, वह सुब्रमण्यम द्वारा "एल्युमीनियम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड के लिए" हस्ताक्षर करके अपीलकर्ता-कंपनी को लिखा गया था। इसमें अपीलकर्ता-कंपनी द्वारा निगम को पहले भेजे गए दावे के विवरण में विविध वस्तुओं के संबंध में दावा की गई विभिन्न राशियों से संबंधित कई पैराग्राफ शामिल हैं, जिनमें से कुछ को लेखक ने खारिज कर दिया है, जबकि अन्य को स्वीकार कर लिया गया है। अंतिम पैराग्राफ, जिसके बारे में कहा जाता है कि इसमें स्वीकारोक्ति शामिल है, इस प्रकार है

"उपरोक्त सभी समायोजनों के बाद, स्थिति संलग्न विवरण के अनुसार होगी। कुछ शेष पर ब्याज प्रदान किया गया है और अन्य पर यह प्रदान

नहीं किया गया है। हम आपसे शेष राशि रुपये 1,07,477-13-11 की पुष्टि करने के लिए अनुरोध करते हैं, ताकि हम ब्याज की गणना के साथ आगे बढ़ सकें और आपके दावे का हमेशा के लिए तुरंत निपटान कर सकें।

कृपया इस पत्र को स्वीकार करें और हमें तत्काल उत्तर प्रदान करें।"

पत्र के अंतिम वाक्य में इसकी एक प्रति लाला पुरषोत्तम दासजी सिंघानिया को "जानकारी के लिए" भेजने की बात कही गई है। जैसा कि अन्य साक्ष्यों से और "सूचना के लिए" शब्द से भी स्पष्ट है कि पत्र की प्रति अनुमोदन के लिए नहीं भेजी गई थी और स्पष्ट रूप से इसका उद्देश्य पुरुषोत्तम सिंघानिया द्वारा इस तरह के अनुमोदन के अधीन होना नहीं था। पत्र के साथ संलग्न विवरण का शीषर्क "मैसर्स लक्ष्मीरतन कॉटन मिल्स कंपनी लिमिटेड का खाता' है और सबसे पहले अपीलार्थी-कंपनी के पक्ष में "हमारे बही-खाते के अनुसार" रुपये 1,00,760-0-7 का शेष निर्धारित करता है, जिसका अर्थ निगम का बही-खाता है, और उसके पहले फुट-नोट में कहा गया है कि उस राशि में 31 मार्च 1943 तक की गई गणना अनुसार रुपये 26,490-11-10 का ब्याज शामिल है। अन्य कम्पनियो के कारण, अपीलकर्ता-कंपनी को या उसके द्वारा देय कई राशियाँ, समायोजित की गईं और अंत में शेष राशि रु 1,07,447-13-11, जिसकी यदि अपीलकर्ता-कंपनी द्वारा पुष्टि की जाती है, तो पत्र (प्रदर्श 1) में उल्लिखित है कि निगम "आपके दावे को तुरंत हमेशा के लिए निपटा देगा।"

जैसा कि पूर्वोक्त कहा गया है, उच्च न्यायालय ने, विचारण न्यायालय के दृष्टिकोण के विपरीत, माना कि ये पत्र केवल "व्याख्यात्मक" थे और इसका उद्देश्य देनदार और लेनदार के रूप में पक्षकारों के बीच दायित्व या विधिक संबंध को स्वीकार करना नहीं था। निगम के अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण के समर्थन में यह भी तर्क दिया कि पत्र अपीलकर्ता-कंपनी द्वारा किए गए दावे के विवरण के समायोजन और सुलह की प्रक्रिया में लिखा गया था और निगम द्वारा इसका प्रति-कथन दिया गया था और इसलिए, इसे निगम की ओर से दायित्व की स्वीकृति के रूप में नहीं माना जा सकता है, और किसी भी स्थिति में, सुब्रमण्यम, जिसने इसे लिखा था, के पास निगम की ओर से ऐसे किसी भी दायित्व को स्वीकार करने का कोई अधिकार नहीं था।

इससे पहले कि हम पत्र (प्रदर्श 1) के संबंध में उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण की सत्यता या अन्यथा की जांच करने के लिए आगे बढ़ें, पक्षकारों के मध्य पहले हुए पत्राचार और आसपास की परिस्थितियों की जांच करना आवश्यक होगा जिसके कारण वह पत्र आया।

जैसा कि पहले ही कहा गया है, पंचाट के पैरा (9) के अन्तर्गत, जिसके द्वारा कम्पनियों को, एक बार, संयुक्त रूप से नियंत्रित किया गया था, अलग कर दिया गया था, दोनों पक्षों या उनकी फर्मों द्वारा अग्रिम धन या उनके पास जमा राशि एक दूसरे को देय थी। पंचाट ने गुप्ता समूह को

सिंघानिया की खाता बही और निगम से संबंधित अन्य कागजात और फाइलें सौंपने का भी निर्देश दिया। तदनुसार, गुप्ता ने उन्हें 1 फरवरी 1944 को निगम को सौंप दिया। निगम की शिकायत थी कि इन पुस्तकों का ठीक से रखरखाव नहीं किया गया था और इसमें विसंगतियां थीं और परिणामस्वरूप निगम को उन्हें अंतिम रूप देने के लिए गुप्ता की मदद की आवश्यकता थी। मार्च 1945 की शुरुआत में, अपीलकर्ता-कंपनी ने शेष राशी और निगम द्वारा देय राशि के संबंध में खाते का एक विवरण भी भेजा था। 20 अप्रैल, 1945 को, निगम के एक निदेशक, कर्नल नायडू ने अपीलकर्ता-कंपनी को पत्र लिखा, जिसमें खाते के विवरण में कुछ मदो की ओर इशारा किया गया था, जिन पर निगम ने विवाद किया था। 11/12 सितंबर, 1945 को, अपीलकर्ता-कंपनी ने रुपये 2,94,000 का दावा करते हुए और देय खाते का विवरण भेजा। 17 दिसंबर, 1945, को निगम के प्रभारी निदेशक लक्ष्मीपत सिंघानिया द्वारा जबाब में भेजे गए एक पत्र में निगम द्वारा विवादित विभिन्न मदों और उन मदों को सुलझाने के लिए किए गए प्रयासों का उल्लेख किया गया था और जबाब के साथ निगम के अनुसार सही स्थिति दर्शाते हुए एक सुलह विवरण संलग्न किया गया था। अन्य बातों के अलावा, उत्तर इस प्रकार बताया गया है,

"आप उक्त से पाएंगे कि हमने यह देखने के लिए अपने स्तर पर पूरी कोशिश की है कि इन खातों को जल्द से जल्द निपटाया जाए क्योंकि हम

इसे अंतिम रूप देने के लिए बहुत उत्सुक थे लेकिन दुर्भाग्य से, आपकी तरफ से बिल्कुल भी प्रतिक्रिया नहीं हुई।

सुलह विवरण से आप पाएंगे कि हमारे खातों के अनुसार लक्ष्मी रतन कॉटन मिल्स कंपनी लिमिटेड को देय राशि रुपये 98,101-3-1 है जिसमें 31 मार्च, 1943 तक की ब्याज की गणना और आपके खाते में जमा किया गया ब्याज शामिल है। उस तारीख से निपटान की तारीख तक के ब्याज की गणना तब की जाएगी जब यह खाता आपके द्वारा उचित रूप से मिलान और पुष्टि कर दिया जाएगा।"

उत्तर में बताया गया कि उक्त राशि रुपये 98,101-3-1 के बदले निगम ने रुपये 38,490-2-2 और रुपये 8,256-13-6 का दावा किया, जिसे इसके अनुसार समायोजित किया जाना था। अंत में, जवाब में धमकी दी गई कि जब तक एक महीने के अन्दर खातों को अंतिम रूप नहीं दिया जाता, "हम 30 सितंबर, 1945 के बाद आपके किसी भी बकाया पर कोई ब्याज नहीं देंगे।" उत्तर के साथ संलग्न विवरण में बताई गई स्थिति इस प्रकार थी,

"मैसर्स लक्ष्मीरतन कॉटन मिल्स कंपनी लिमिटेड के खातों का मिलान।

ए.सी.आई. लिमिटेड की पुस्तकों के अनुसार शेष राशिरु. 98,101-3-1

विवरण के अनुसार शेष राशि रु. 2,94,658-0-9

अंतर रु.1,96,556-13-8"

इसके बाद विस्तृत मद विवरण के साथ निगम द्वारा कुल रुपये 1,96,556-13-8 का दावा किया गया। उपरोक्त उल्लेखित विवरण वह था जिसके अन्तर्गत अपीलकर्ता-कंपनी ने रुपये 2,94,658-0-9 का दावा किया था और जिसे पहले मार्च 1945 में राम रतन गुप्ता ने पुरूषोत्तम सिंघानिया को भेजा था। निगम ने विभिन्न राशियों का दावा करते हुए इस पर आपत्ति जताई और निगम के अनुसार, उक्त राशी के विरुद्ध उसके द्वारा केवल रुपये 98,101-3-1 देय था जैसा कि "ए.सी.आई. लिमिटेड की पुस्तकों के अनुसार, निगम द्वारा बनाए गए खाते की पुस्तकों द्वारा दिखाया गया है। दिनांक 17 सितंबर, 1945 के उपरोक्त पत्र के जबाब में अपीलकर्ता-कंपनी के उत्तर, दिनांकित 6 दिसंबर, 1945 और उसके साथ संलग्न विवरण से पता चलता है कि अपीलकर्ता-कंपनी की ओर से उक्त अरोड़ा और निगम की ओर से उक्त सुब्रमण्यम ने मुलाकात की और खातों का समाधान करने का प्रयास किया। अपीलकर्ता-कंपनी ने इस उत्तर के द्वारा उस बैठक में सुब्रमण्यम द्वारा स्पष्ट रूप से मांगे गए कुछ मदों के विवरण भी भेजे और इसके बदले में उक्त समाधान विवरण में उसके लिए डेबिट की गई कुछ वस्तुओं का विवरण मांगा। 21 दिसंबर 1945 को, सुब्रमण्यम ने अपीलकर्ता-कंपनी के 6 दिसंबर, 1945 के पत्र का उत्तर दिया। उस पत्र के द्वारा उसने दो बातें बताईं, (1) कि अपीलकर्ता-कंपनी द्वारा दावा की गई कुछ मदों और जो विवादित मद या तो स्वीकार किए गए या अस्वीकृत किए गए के

सम्बंध में, और (2) चूँकि अपीलकर्ता-कंपनी ने अपने दावे के विवरण में अन्य संबद्ध कम्पनियों के खातों को भी जोड़ दिया था, उसने भी अपने पत्र के साथ भेजे जा रहे खातों के विवरण को तैयार करते समय उन खातों को जोड़ दिया था। पत्र के अंत में कहा गया है: "हम इन सभी खातों के संयाेजन के बाद एक समेकित विवरण संलग्न कर रहे हैं।" सुब्रमण्यम द्वारा अपने उत्तर के साथ संलग्न समेकित विवरण (प्रदर्श 44) इस प्रकार है:

"मेसर्स लक्ष्मीरतन कॉटन मिल्स कम्पनी लि. के खाते

1 दिसंबर 1945

हमारे खाते के अनुसार शेष रु. 1,00,304-7-7"

फिर अन्य कम्पिनयों के खातों का अनुसरण करें, जिनके खातों को सुब्रमण्यम ने खाते का समेकित विवरण कहा था। यह विवरण 1 दिसंबर, 1945 को निगम की लेखा पुस्तकों में अपीलकर्ता-कंपनी की स्थिति को दर्शाता है।

यह देखा जाएगा कि निगम द्वारा विवरण में स्वीकार की गई, अपीलकर्ता-कंपनी को देय राशी रुपये 98,000 (पहले के विवरण, दिनांक 17 सितंबर, 1945 के अनुसार) से इतर बढकर रुपये 1,00,304-7-7 हो गई है। यह वृद्धि इस तथ्य के कारण थी कि, विवादित मदों को समायोजित करते समय सुब्रमण्यम ने सितंबर और दिसंबर 1945 के बीच

जब विवादित वस्तुओं पर चर्चा और समायोजन किया गया था, उनमें से कुछ को अनुमति दी थी और "पारित" किया था, और जो पारित किए गए थे उनसे संबंधित प्रविष्टियां निगम की पुस्तकों में अपीलकर्ता-कंपनी के क्रेडिट में अंकित की गईं थीं।

21 दिसंबर, 1945 के पत्र का जवाब अपीलकर्ता-कंपनी ने 25 फरवरी, 1946 को, सुब्रमण्यम द्वारा अपने उक्त पत्र में दावा की गई वस्तु के संबंध में विवरण पूछते हुए दिया था। इस पत्र के जवाब में ही सुब्रमण्यम ने विचाराधीन पत्र (प्रदर्श 1) लिखा था और जिसके साथ उन्होंने रुपये 1,07,447-13-11 को "शेष राशि अधोनीत" के रूप में दर्शाने वाला विवरण भेजा था।

उसके बाद पार्टियों के बीच पत्राचार जारी रहा, अपीलकर्ता कंपनी ने कहा कि रुपये की राशि 1,07,447-13-11 की तुलना में बहुत बड़ी राशि उसे देय थी। इसके सिवाय, बाद के पत्राचार से अभिस्वीकृति के प्रश्न पर कोई प्रकाश नहीं पड़ेगा, और इसलिए, अब हमें इस पर खुद को रोके रखने की जरूरत है।

फिलहाल सुब्रमण्यम के अधिकार के प्रश्न को छोड़ दें, तो पत्राचार और निगम की ओर से कुछ पत्रों के साथ भेजे गए खातों के विवरण से निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं:

(ए) उक्त पंचाट के पैरा (9) के अनुसरण में, अपीलकर्ता-कंपनी ने मार्च 1945 की शुरुआत में रुपये 2,94,000 का दावा करने वाले खाते का एक विवरण निगम को भेजा।

(बी) पक्षकारों के बीच चले लंबे पत्राचार के दौरान किसी भी समय, निगम ने भुगतान करने के अपने दायित्व से इन्कार नहीं किया; इसने अपीलकर्ता-कंपनी द्वारा दावा की गई राशि की सत्यता पर विवाद करने के लिए कुछ मदों को, जिनके लिए अपीलकर्ता-कंपनी ने क्रेडिट का दावा किया था, चुनौती दी और अपने स्वयं के कुछ प्रतिदावे किए। अपीलकर्ता-कंपनी द्वारा भेजे गए खाते के विवरण के विपरीत, निगम ने अपना स्वयं का विवरण भेजा जिसे उसने 'सुलह खाता' कहा।

(सी) अपीलकर्ता-कंपनी द्वारा दावा की गई कई वस्तुओं के समायोजन और समाधान की प्रक्रिया के दौरान, कुछ को अनुमति दी गई और कुछ को अस्वीकार कर दिया गया, और निगम ने अपीलकर्ता-कंपनी के खिलाफ दावा की गई कुछ वस्तुओं को डेबिट करने की मांग की।

(घ) निगम द्वारा 17 सितम्बर 1945 को भेजे गए सुलह विवरण के अनुसार अपीलकर्ता-कंपनी का केवल रुपये 98,000 का बकाया था, जबकि उसके रुपये 2,94,000 का दावा किया गया था। बाद में, यह आंकड़ा समय-समय पर बढता गया क्योंकि अपीलकर्ता-कंपनी द्वारा दावा की गई कुछ वस्तुओं को अनुमति दी गई थी, जिसके परिणामस्वरूप पत्र (प्रदर्श 1)

के साथ भेजे गए विवरण में अपीलकर्ता-कंपनी को देय शेष को रुपये 1,07,447 में दिखाया गया था।

(ई) खातों के विवरण, (प्रदर्श 43 और 44) और पत्र के साथ संलग्न, (प्रदर्श् 1) में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि उसमें दिखाया गया बकाया, निगम द्वारा बनाए गए बही-खाते के अनुसार दिखाया गया था। पत्रों में समान रूप से स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ऐसे बकाया पर ब्याज कुछ निश्चित तिथियों तक जमा किया जा रहा था और आगे की अवधि के लिए खातों को अंतिम रूप दिए जाने पर जमा किया जाएगा।

इन तथ्यों से यह अवश्य पता चलता है कि निगम की पुस्तकों में अपीलकर्ता-कंपनी के नाम पर खाता अस्तित्व में था जिसमें समय-समय पर दिखाए गए शेष पर ब्याज जमा किया जा रहा था और जिसमें सुलह के दौरान पारित मदों के संबंध में राशि भी जमा की जा रही थी। पत्र (प्रदर्श 1) में कथन कि "उपरोक्त सभी समायोजनों के बाद स्थिति संलग्न विवरण के अनुसार होगी", अर्थात, रुपये 1,07,447-13-11 का शेष अपीलकर्ता-कंपनी को देय था, स्पष्ट रूप से धारा 19(1) के अर्थ के भीतर एक अभिस्वीकृति के समान होना चाहिए। हमारे विचार में यदि पत्र (प्रदर्श् 1) को पक्षों के बीच विवाद की पृष्ठभूमि में देखा जाए, तो जो विवाद, जैसा कि ऊपर कहा गया था, अपीलकर्ता कंपनी द्वारा दावा की गई राशि की शुद्धता के प्रश्न तक सीमित था। इसके संबंध में जो पत्राचार हुआ, उसमें यह

कहना असंभव होगा कि पत्र (प्रदर्श 1) और उसके साथ संलग्न खाते का विवरण केवल व्याख्यात्मक था और देनदार और लेनदार के विधिक संबंध की स्वीकृति और अंतिम रूप देने पर खाते के अन्त में देय राशि का भुगतान करने के दायित्व के बराबर नहीं था।

लेकिन तर्क यह था कि चूंकि पत्र (प्रदर्श् 1) में अपीलकर्ता-कंपनी को देय शेष के रूप में रुपये 1,07,447 की राशि की पुष्टि की मांग की गई थी और चूंकि अपीलकर्ता कंपनी इसकी पुष्टि करने में विफल रही, दायित्व की स्वीकृति सशर्त थी, और इसलिए, एक अभिस्वीकृति के रूप में काम नहीं कर सकती। इस संबंध में *मनीराम बनाम रूपचंद, L.R. 33 I.A. 165,* के फैसले पर भरोसा किया गया था और विशेष रूप से *इन री रिवर स्टीमर कंपनी बनाम मितेहेल, L.R. 6 Ch.App. 822 at 828,* में *मेलिश, एल.जे.* की प्रसिद्ध उक्ति पर भरोसा किया गया था। उक्ति यह थी कि मामले को परिसीमा के क़ानून से बाहर निकालने की अभिस्वीकृति या तो ऐसी होनी चाहिए जिससे भुगतान करने का पूर्ण वादा करने का अनुमान लगाया जा सके, या दूसरा, विशिष्ट ऋण का भुगतान करने का बिना शर्त वादा हो, या तीसरा, ऋण का भुगतान करने का एक सशर्त वादा होना चाहिए और साक्ष्य होना चाहिए कि शर्त पूरी हो गई है। *मनीराम* के मामले में जिस बयान पर भरोसा किया गया, वह प्रतिवादी द्वारा पहले की प्रोबेट कार्यवाही में दायर एक लिखित कथन में था, जिसमें यह कहा गया था कि आवेदक रूपचंद नानाभाई (प्रतिवादी), निष्पादकों में से एक के रूप में, के "पिछले

पांच सालों से मृतक (वसीयतकर्ता) के साथ खुले और चालू खाते थे और कि कथित ऋणग्रस्तता ने प्रोबेट के लिए आवेदन करने के उसके अधिकार को प्रभावित नहीं किया"। यह माना गया कि बयान एक अभिस्वीकृति के लिए पर्याप्त था। माननीय न्यायाधिपति ने कहा "एक बिना शर्त अभिस्वीकृति , हमेशा भुगतान करने के वादे को माना जाता है, क्योंकि अगर इसके विपरीत कुछ भी नहीं कहा जाता है तो यह स्वाभाविक निष्कर्ष है। यह वही है जो हर ईमानदार आदमी करना चाहता है। इस स्वीकारोक्ति को अलग अर्थ देने का यह कोई कारण नहीं हो सकता है कि प्राकृतिक रूप से दावेदार को खातों का निपटान करने का अधिकार है, और जब उसके पक्ष में शेष राशि का पता लगाकर शर्त पूरी की जाती है तो जो कोई भी लेनदार है उसके द्वारा भुगतान किया जाएगा। यह *मेलिश, एल.जे.* के तीसरे अनुपात का मामला है, भुगतान करने का एक सशर्त वादा और शर्त पूरी की गई है।" हम नहीं देखते कि यह निर्णय निगम को कैसे समर्थन दे सकता है क्योंकि वर्तमान मामले में भी एक मौजूदा खाते की स्वीकृति थी जिसके अंतिम रूप देने पर निगम उसके आधार पर देय शेष राशि का भुगतान करने के लिए तैयार था। एकमात्र विवाद यह था कि शेष राशि क्या होगी, निगम के अनुसार रुपये 1,07,447 या अपीलकर्ता-कंपनी के अनुसार एक बड़ी राशि। पत्र (प्रदर्श 1) में मांगी गई पुष्टि मौजूदा खाते के अस्तित्व और खातों को अंतिम रूप दिए जाने पर भुगतान करने की देनदारी के संबंध में स्वीकृति की शर्त नहीं थी, बल्कि निगम के अनुसार,

विशिष्ट राशि जो कि इसकी गणना के पश्चात इसके द्वारा देय राशि होगी, के लिए थी। *राजा कवली अरुणाचेला राव बहादुर बनाम श्री आर रंगिया अप्प राव बहादुर, (1906) I.L.R. 29 Mad. 519,* का निर्णय लागू नहीं होता है क्योंकि जिस शर्त के तहत समझौता किया गया था उसका पालन नहीं किया गया था, और इसलिए, इस दस्तावेज़ को अभिस्वीकृति के रूप में वर्णित न किया जा सकता है। इसके अलावा *रत्लाप्रगदा राममूर्ति बनाम थम्माना गोपेययया, (1917) I.L.R. 40 Mad. 701* में, पत्र जिस पर एक अभिस्वीकृति के रूप में भरोसा किया गया था उसमें कहा गया था कि यदि कुछ मध्यस्थों का यह निर्णय है कि प्रतिवादी को किसी भी राशि का भुगतान करना चाहिए तो वह तुरंत भुगतान करेगा, लेकिन यदि मध्यस्थ निर्णय लेने में विफल रहे तो वादी मुकदमा कर सकता है और उस मामले में प्रतिवादी परिसीमा का निवेदन नहीं करेगा। मध्यस्थ निर्णय लेने में असफल रहे। यह माना गया कि पत्र सशर्त है और शर्त का पालन नही किए जाने से पत्र एक अभिस्वीकृति के रूप में कार्य नहीं करता है। इस निर्णय का भी वर्तमान मामले के तथ्यों पर कोई प्रभाव नहीं है। श्री सेन द्वारा भरोसा किए गए मामलों के विपरीत, वर्तमान मामला एक विधमान खाते और विधिक संबंध की स्वीकृति और खातों को अंतिम रूप देने पर जो भी राशि मिलेगी उसका भुगतान करने के दायित्व में से एक है। ऐसी कोई शर्त नहीं है, जिसके अधीन स्वीकृति दी गई व जो अपूर्ण रह गयी हो।

आमतौर पर, निगम के सचिव के रूप में सुब्रमण्यम के कार्य मंत्रिस्तरीय और प्रशासनिक होंगे। केवल एक सचिव के रूप में, उसके पास निगम की ओर से अनुबंध या अन्य प्रतिबद्धताएँ दर्ज करके उसे आबद्ध करने का कोई अधिकार नहीं होगा। मुख्य लेखाकार और पावर ऑफ अटॉर्नी के धारक के रूप में, प्रथम के संबंध में उसका कार्य उचित खातों के रखरखाव की निगरानी करना होगा, और बाद के संबंध में मुकदमेबाजी में निगम की पैरवी करना और उसका प्रतिनिधित्व करना होगा। उसके द्वारा धारित इन तीन पदों में से कोई भी स्वयं या संचयी रूप से उसे निगम पर बाध्यकारी अभिस्वीकृति करने के लिए विधिवत अधिकृत व्यक्ति नहीं बनाएगा। साथ ही, यह तथ्य कि उसने निगम के लिए पत्राचार किया, उसे निगम को आबद्ध करने वाली अभिस्वीकृति करने के लिए अधिकृत व्यक्ति नहीं बनाया जाएगा। [देंखे - *उमा शंकर बनाम गोबिंद नारायण, I.L.R. 46 All. 892*]। परंतु उसके द्वारा किए गए कार्यों और कर्तव्यों का ऐसा विवरण संपूर्ण नहीं होगा। यदि उसके पत्राचार के साथ संलग्न खातों के विवरण की बारीकी से जांच की जाती है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह अपीलकर्ता-कंपनी द्वारा किए गए दावे की जांच करने के लिए और अपीलकर्ता-कंपनी द्वारा विभिन्न मदों के लिए किए गए क्रेडिट के दावे में कुछ को अस्वीकार करने के लिए, और महत्वपूर्ण है कि कुछ को अनुमति देने के लिए अधिकृत था। उसके पास ऐसा अधिकार था, यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि जिन वस्तुओं की उन्होंने अनुमति दी थी, उनके संबंध में अपीलकर्ता-कंपनी

को क्रेडिट दिया गया था और अपीलकर्ता-कंपनी के क्रेडिट के लिए आवश्यक प्रविष्टियाँ निगम द्वारा बनाए गए खाते की पुस्तकों में अंकित की गई थीं। इस प्रकार निगम द्वारा 17 सितम्बर 1945 के पत्र के साथ भेजे गए सुलह विवरण (प्रदर्श 43) में अपीलकर्ता कंपनी का रुपये 98,101 बकाया दिखाया गया। उस कथन में प्रयुक्त शब्द थे "ए.सी.आई. लिमिटेड बुक्स के अनुसार बकाया"। ये शब्द स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि निगम की पुस्तकों में अपीलकर्ता-कंपनी के नाम पर एक विधमान खाता था और उस खाते के अन्त में इस पर रुपये 98,101 रुपये की राशि का बकाया था। अपीलकर्ता-कंपनी को भेजे गए खाते के एक अन्य विवरण, प्रदर्श 44, में 1 दिसंबर, 1945 को "बही के अनुसार शेष राशि" के रूप में रुपये 1,00,304-7-7 बताए गए हैं। जैसा कि पहले बताया गया है, सुब्रमण्यम द्वारा कुल रुपये 2,203-4-6 के कुछ मदों को पारित करने व उनकी प्रविष्टियाँ बही में अंकित कर दिये जाने से, शेष राशि में रुपये 98,101 से रुपये 100,304 तक की वृद्धि हुई है। इसके बाद, उसके द्वारा कुल रुपये 465-10-0 की अतिरिक्त मदें पारित की गईं, जिसे जोड़ने पर दिसंबर 1945 के अंत में शेष राशि बढ़कर रुपये 1,00,760-1-7 हो गई। यह शेष राशि पत्र (प्रदर्श 1) के साथ भेजे गए विवरण में "हमारे बहीखाते के अनुसार" बताई गई थी।

यह सोचना असंभव है कि खातों को अंतिम रूप देने के दौरान, ऐसा करने के लिए अधिकृत किए बिना, सुब्रमण्यम ने अपीलकर्ता-कंपनी द्वारा दावा किए गए विभिन्न मदों पर अपनी सहमति दे दी। न ही यह कहना

संभव है कि उसके पारित करने पर, ऐसा करने के लिए अधिकृत हुए बिना, निगम की लेखा पुस्तकों में उन मदों की आवश्यक प्रविष्टियाँ की गईं। इसके अलावा, जब तक वह खातों को अंतिम रूप देने और अपीलकर्ता कंपनी को देय राशि निकालने के लिए अधिकृत नहीं था, तब तक वह अपीलकर्ता-कंपनी को खातों के वह विवरण नहीं भेज सकता था, जिसमें "बहीखाते के अनुसार" शेष राशि दिखाई गई थी।

अपनी साक्ष्य में सुब्रमण्यम ने गवाही दी कि निगम के प्रभारी निदेशक लक्ष्मीपत सिंघानिया को पता था कि वह पक्षकारों के बीच खातों के मामले में अपीलकर्ता कंपनी के प्रतिनिधि अरोड़ा के साथ काम कर रहा था। उसने यह भी कहा कि उसे दोनों के बीच विवाद का पता लगाना था और परिणामस्वरूप कई बिंदुओं का समाधान किया गया था और उसने अपीलकर्ता कंपनी को पत्रों के माध्यम से उन बिंदुओं की पुष्टि की जिनका समाधान हो गया था। इसके बाद उसने कहा कि निगम के निदेशकों को उसके द्वारा उक्त बिंदुओं के निपटारे के बारे में पता था लेकिन उन्होंने न तो इसकी पुष्टि की और न ही इसका खंडन किया। ऐसा इसलिए था, क्योंकि, जैसा कि उसने स्वीकार किया था, उन निर्धारित बिंदुओं को उनके अनुसमर्थन के लिए निदेशकों के समक्ष कभी नहीं रखा गया। उसने यह नहीं कहा कि उसके पास मतभेदों को निपटाने का कोई अधिकार नहीं है या उसने इसे निदेशकों की मंजूरी के अधीन सुलझा लिया है। यह स्पष्ट है कि वह पार्टियों के बीच मतभेद के विभिन्न बिंदुओं का निपटान नहीं कर

सकता था और ऐसे निपटान के परिणामस्वरूप पुस्तकों में उपयुक्त प्रविष्टियाँ तब तक पोस्ट नहीं की जा सकती थीं जब तक कि उसे खातों को अंतिम रूप देने और अपीलकर्ता-कंपनी के साथ अंतिम समायोजन करने के लिए निदेशकों द्वारा अधिकृत नहीं किया जाता। बेशक, उसने यह बताने की कोशिश की कि निगम की स्थिति स्पष्ट करने हेतू पत्राचार करने के लिए सचिव के अलावा उसके पास कोई अधिकार नहीं है। उसने इस बात से भी इन्कार किया कि उसके द्वारा उक्त मदों का निपटान करने के बाद निगम की पुस्तकों में प्रविष्टियाँ की गई थीं। इन्कार निरर्थक है क्योंकि समय-समय पर उसके द्वारा अपीलकर्ता-कंपनी को भेजे गए खाते के विवरण स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि ऐसी प्रविष्टियाँ की गई थीं। इन सभी साक्ष्यों का प्रभाव यह है कि सचिव-व-मुख्य लेखाकार के रूप में उसके कार्यों के अलावा, उसे पक्षकारों के मध्य खातों को अंतिम रूप देने, उनके बीच मतभेदों को निपटाने और निगम द्वारा देय अंतिम आंकड़े पर पहुंचने के लिए अधिकृत किया गया था। ऐसे अधिकार के अनुसरण में ही उसने अरोड़ा के साथ व्यवहार किया, कुछ मदें पारित कीं जिनके लिए अपीलकर्ता-कंपनी ने क्रेडिट का दावा किया था, उन प्रविष्टियों को निगम की पुस्तकों में अंकित किया, समय-समय पर खातों के विवरण भेजे और अंततः पत्र, (प्रदर्श 1) संबोधित किया जिसमें कहा गया है कि निगम की पुस्तकों के अनुसार रुपये 1,07,447 की शेष राशि अपीलकर्ता-कंपनी को देय थी। वह संभवतः अपीलकर्ता-कंपनी से उस शेष राशि की पुष्टि करने के

लिए नहीं कह सकता था जब तक कि उसके पास निगम की ओर से यह स्वीकार करने का अधिकार नहीं था कि वह उसके द्वारा देय शेष राशि थी। इसलिए, यह निष्कर्ष अपरिहार्य है कि उसके पास अभिस्वीकृति देने का निहित अधिकार था और उसने ऐसा करने के इरादे से पत्र (प्रदर्श 1) लिखा था।

तदनुसार, मुकदमे परिसीमा द्वारा बाधित होने के आधार पर खारिज किए जाने योग्य नहीं थे, और उच्च न्यायालय ने निगम द्वारा अपील की अनुमति देने और मुकदमों को खारिज करने में गलती की थी।

इसका परिणाम यह हुआ कि अपीलें स्वीकार की जाती हैं और उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है। मुकदमों में उठने वाले बाकी प्रश्नों पर निर्णय लेने और अपीलकर्ताओं (मूल वादी) को देय राशि का पता लगाने के लिए, मामले को उच्च न्यायालय में भेजना होगा क्योंकि उच्च न्यायालय ने उक्त प्रश्नों पर ध्यान नहीं दिया है क्योंकि उसने मुकदमों को परिसीमा के बिन्दु पर खारिज कर दिया है। उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित अपीलों में लंबे समय तक स्थगन के कारण बहुत लंबी अवधि बीत जाने को ध्यान में रखते हुए, हमें पूरी उम्मीद है कि उच्च न्यायालय मामलों का यथाशीघ्र निपटान करेगा। निगम अपीलकर्ताओं को इन अपीलों की लागत का भुगतान करेगा, ऐसी लागतें, लागतों का एक भाग होंगी।

अपील स्वीकार

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी देवेन्द्र सिंह नागर (आर.जे.एस.) (विशेष सत्र न्यायाधीश, पोक्सो अधिनियम प्रकरण संख्या-1, भीलवाड़ा) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।